वाक् चतुष्टय तत्त्व

यह स्थूल शब्द वैखरी वाणी के नाम से कहा जाता है। विखर अर्थात् शरीर में उत्पन्न होनेवाली– शरीरेन्द्रियपर्यन्त चेष्टा सम्पादक वाणी ही वैखरी वाणी है-

"विखरः शरीरं, तत्र भवा तत्पर्यन्त चेष्टासम्पादिकेत्यर्थः ।"
ई० प्र० वि०वि० अ० १ वि० ५, पृ० १८७ ।

वैखरी, स्थूल, सूक्ष्म और परभेद से तीन प्रकार की है। स्फुट वर्णों की उत्पत्ति में जो कारण है वह स्थूल वैखरी है। पद वाक्यादि उसके अनेक कार्य हैं-

या तु स्फुटानां वर्णनामुत्पत्तौ कारणं भवेत् ।

सा स्थूला वैखरी यस्याः कार्यं वाक्यादिभूयसा।

तन्त्रालोक आ०३, २४४ ।

विवक्षात्मक अनुसन्धान को सूक्ष्म वैखरी कहते हैं। अनुपाधिमान् चिदात्मक स्वरूप ही वैखरी का पररूप है । वैखरी को क्रियाशक्ति कहा जाता है । यद्यपि अस्फुट

क्रियाशक्ति अपनी बीजावस्था-परमाकला दशा में रहती है किन्तु यहाँ वैखरी दशा में वह स्फुटरूप ग्रहण करती है । वामकेश्वर तंत्र के अन्तर्गत नित्याषोडशिकार्णव के अनुसार परमाशक्ति अथवा त्रिपुरा या परावाक् जब स्वनिष्ठ स्फुरता का ईक्षण करती है तभी, विश्व का उदय होता है-

यथा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी ।

स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः ॥

नित्याषोडशिकार्णव वि० ६/९

परमाशक्ति के ईक्षण में न केवल इच्छा किन्तु ज्ञान और क्रिया भी सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहती है । सेतुबन्ध में योगिवर भास्करराय ने इसको पूर्णतया स्पष्ट किया है-

वस्तुतस्तु तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति श्रुतावीक्षणस्य बहु स्यामित्याकारकता प्रदर्शनात्प्राथमिकी वृत्तिरिच्छाज्ञानोभयरूपा कि बहुना तत्तमोऽ कुरुतेत्यादि श्रुत्यन्तरपर्यालोचनया सैव च कृतिरूपाऽपि । एतेन स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चेति श्रुतिरप्युपपद्यते । तत्र

बलशब्दस्येच्छापरत्वेन प्राचीनर्व्याख्यानात् ।'......तेनेच्छया स्फुरत्तां पश्येदिति पदत्रयेणेच्छाकृतिज्ञानानामैक्यध्वननात् इच्छादित्रय समष्टि रूपशान्तादेवीस्वरूपमीक्षणमित्युक्तं भवति ।

सेतुबन्ध, पृ० १८६-८७

आचार्य अभिनवगुप्त ने भी क्रिया को विमर्शात्मिका स्वीकार करते हुए कहा है कि वह (क्रिया) मूलभूमि में संवेदन का ही अवलम्ब ग्रहण करती अतः क्रिया ज्ञान की पुच्छभूत है -

“सा हि क्रिया मूलभूमौ संवेदनमेव अवलम्बते बिमर्शरूपत्वात् ।" "तथंव परं प्रति जिज्ञापयिषुः प्राणे स्फुटीभूता वैखरी । शरीरे तु स्पन्दनरूपा क्रिया | इयति च सर्वत्र विमर्शरूपतैवानुगता।" "यत एव ज्ञानस्यैव क्रिया पुच्छभूता" । (ई० प्र० वि० वि० अ० १ वि० १, पृ० १०५) **“विमर्शरूपानधिकस्वभावा हि समस्ता क्रियेत्युक्तम्”** । ई० प्र० वि० वि० अ० १, वि०५, पृ० १८८

वैखरीरूप स्थूल वाक्, कारणबिन्दु से कार्यबिन्दु तथा

नादात्मक मूल, अंकुर, और प्रसररूपों को पार करके बिन्दुरूप में पुनः परावर्तनात्मक संहार दशा का बोध करानेवाली है । अतः इसे रौद्री शक्ति भी कहा जाता है । प्रकाशांशरूप रौद्री और विमर्शांशरूप क्रिया का मेल ही वैखरी वाणी है । यहीं आकर विश्व चक्र के ठाठ या तंत्ररूप त्रिकोण का संघटन होता है । इसीलिए वैखरी को भी उज्ज्वल शृङ्गाटवपु (सिंघाड़े का आकार) की आख्या मिली है ।

तत्संहृतिदशायां तु बैन्दव रूपमास्थिता ॥ ३९ ॥

प्रत्यावृत्तिक्रमेणैव शृङ्गाटवपुरुज्ज्वला

क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा ॥ ४० ॥

योगिनीहृदय

सुप्रसिद्ध बिन्दु, नाद और बीज - इस त्रयी में वैखरी वाक् को बीज कहा जाता है । परावारूप' शब्दब्रह्म, हृदय से मुख पर्यन्त, वायु के द्वारा कण्ठादि स्थानों में अभिव्यक्त

होकर अकारादि वर्णरूप ग्रहण करके श्रोत्र ग्राह्य स्पष्टतर प्रकाशरूप स्थूल भाव धारण करता है। विराट् पुरुष और इस स्थूल वैखरी वाक् की एकता है-

अथ तदेव वदनपर्यन्तं तेनैव वायुना कण्ठादिस्थानेष्वभिव्यज्यमानमकारादिवर्णरूपपरं श्रोत्रग्रहणयोग्यस्पष्टत र प्रकाशरूपबीजात्मकं सद्वैखरी वागुच्यते। सौभाग्यभास्कर, पृ० ९९

अथ विराड्रूपिणीं बीजात्मिकां हृदयादास्यान्तं अभिव्यज्यमानां शब्द - सामान्यात्मिकां वैखरीमाह वक्त्र इति। विशेषेण खरत्वात् वैखरी। पद्मपादाचार्यकृत विवरण, पृ० ३३ प्रपञ्चसारतन्त्र - टीका |

"ननु शब्दार्थयोस्तादात्म्यस्यैव शक्तिपदार्थत्वात्त्रिगुणस्यापि ब्रह्मणः शब्दब्रह्माभिन्नत्वेन किमिति तत्र सत्यादि शब्दानां लक्षणेत्याशङ्क्य वैखर्यात्मकपदानां विराट्पुरुषेणैव सह तादात्म्येन शुद्धब्रह्मतादाम्यं नास्त्यैवेति समाधित्सया वाचं विभजते" । सौ० भास्कर, पृ० ९८-९९

वक्त्रे वैखर्यथग्रंथ रुरुदिषोरन्तस्य जन्तोः सुषुम्णा

बद्धस्तस्माद्भवति पवनप्रेरितो वर्णसङ्घः ॥ ४३ ॥

प्रपञ्चसारतन्त्र, द्वि० पटल

श्री गौडपादरचित 'सुभगोदय' की टीका 'वासना को उद्धृत करते पुण्यानन्दाचार्यकृत 'काम-कलाविलास' की टीका में कहा गया है – **परा भूमि बीजात्मक जन्मस्थानीय है, पश्यन्ती लतागुच्छ; मध्यमा सौरभ और वैखरी अक्षमाला है-**

परा भूर्जन्म पश्यन्ती बल्लीगुच्छसमुद्भवा ।

मध्यमा सौरभा वैखर्यक्षमाला जयत्यसौ ॥ काम० क० वि,

वैखरी का स्वरूप अभिलापात्मक है वह पञ्चदशाक्षर राशिमय एवं सम्पूर्ण वैदिक और लौकिक शब्दों की आत्मा है ।

यहां अभिलाप से यहाँ अभिप्राय वर्णात्मक शब्दों से ही है। वैसे आ० अभिनवगुप्त ने आन्तर शब्दात्मक सञ्जल्प को अभिलाप कहा है-

"अभिलप्यते आभिमुख्येन विषयिविषयपरवशतात्यागेन बोधस्वातन्त्र्ये शब्देन च विषयस्य तादात्म्यापादनेन व्यक्ततया प्रमातृसाक्षात्कारपर्यन्ततया उच्यते परामृश्यते येन, सोऽभिलापः आन्तरशब्दलक्षण: सञ्जल्प: । "

(ई० प्र० वि०वि० अ० २, वि० २, पृ० ११५)

भर्तृहरि ने भी कहा है कि – जब पदार्थस्वरूप, शब्द के द्वारा आच्छादित या एकीकृत के सदृश प्रतीत होता है तो वह शब्द अभिजल्प के कहलाता है। **"सोऽयमित्यभिसम्बन्धाद्रूपमे की कृतं यदा ।**

शब्दस्यार्थेन तं शब्दमभिजल्पं प्रचक्षते ।।"

वाक्यपदीय २|१३०

अर्थात् 'स: ' इस अनुसन्धान में स्मृति, 'सोऽयं' इन अनुवेध में प्रत्यभिज्ञा, 'स इव अयं' इस अनुरोध में उत्प्रेक्षा, स एवायं' इस अनुयोग में व्यवच्छेद (विभाग) - ये विकल्प भेद भी अभिलापमूलक हैं ।

वैखरी नाम अभिलापरूपिणी पञ्चदशाक्षरराशिमयी सर्ववैदिकलौकिक शब्दात्मिका शक्तिरित्युच्यते ।

कामकलाविलास टी० १० २४

अर्थात् अभिलाप से यहाँ अभिप्राय वर्णात्मक शब्दों से ही है । वैसे अभिनवगुप्त ने आन्तर शब्दात्मक सञ्जल्प को अभिलाप कहा है **"अभिलप्यते आभिमुख्येन विषयिविषयपरवशतात्यागेन बोधस्वातन्त्र्ये शब्देन च विषयस्य तादात्म्यापादनेन व्यक्ततया प्रमातृसाक्षात्कारपर्यन्ततया उच्यते परामृश्यते येन, सोऽभिलापः आन्तरशब्दलक्षण: सञ्जल्प: ।"**

(ई० प्र० वि०वि० अ० २, वि० २, पृ० ११५)

भर्तृहरि ने भी कहा है कि – जब पदार्थस्वरूप, शब्द के द्वारा आच्छादित या एकीकृत के सदृश प्रतीत होता है तो वह शब्द अभिजल्प के कहलाता है-

"सोऽयमित्यभिसम्बन्धाद्रूपमे की कृतं यदा।

शब्दस्यार्थेन तं शब्दमभिजल्पं प्रचक्षते ।"

वाक्यपदीय २।१३०

'स: ' इस अनुसन्धान में स्मृति, 'सोऽयं' इन अनुवेध में प्रत्यभिज्ञा, 'स इव अयं' इस अनुरोध में उत्प्रेक्षा, स एवायं' इस अनुयोग में व्यवच्छेद (विभाग) - ये विकल्प भेद भी अभिलापमूलक हैं ।

पुनश्च यहाँ वैखरी को पञ्चदशाक्षरमय कहा गया है जब कि प्रसिद्धि पचास या एक्यावन अक्षरों की है । **भास्करराय ने सौभाग्यभास्कर में देवी के स्थूल, सूक्ष्म और पर इन रूपों का निर्देश किया है । कर-चरणादि विशिष्ट स्थूलरूप हैं, मन्त्रमय सूक्ष्म और वासनामय पररूप है । गङ्गादिक का जो जलादिमयरूप है वह चतुर्थ स्थूलतर है । सूक्ष्म के भी तीन भेद हैं । १. सूक्ष्म, २. सूक्ष्मतर और ३. सूक्ष्मतम। तीनों को क्रमशः पञ्चदशाक्षरी विद्या, कामकला और कुण्डलिनी समझना चाहिए।** 'देव्यथर्वशीर्ष' में-

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।

पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्यैषा विश्वमातादिविद्योम् ॥

तथा सौन्दर्यलहरी में -

शिव: शक्ति: काम: क्षितिरथ रविः शीतकिरण:
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः ।
अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम् ॥ ३२ ॥

के द्वारा पञ्चदशाक्षरी विद्या का उद्धार किया गया है। यह विद्या अत्यन्त रहस्यमय है। इसे सोमसूर्यानलात्मक त्रिखण्ड मातृका मंत्र कहा गया है । पन्द्रह अक्षरों वाली इस विद्या से सम्पूर्ण पचास मातृका वर्णों का ग्रहण हो जाता है । लक्ष्मीधर ने उपर्युक्त श्लोक की टीका में कहा है :

शिव, शक्ति, काम और क्षिति यह आग्नेयखण्ड है। रवि, शीतकिरण, स्मर, हंस, शक्र यह वर्ण-पञ्चक सौरखण्ड है। दोनों खण्डों के बीज रुद्रग्रन्थि स्थानीय हृल्लेखा बीज है । परा, मार और हरि इस वर्णत्रयी से सौम्यखण्ड का निरूपण किया गया है । सौम्य और सौरखण्ड के मध्य में विष्णुग्रन्थि स्थानीय भुवनेश्वरी बीज स्थापित है। चौथा

एकाक्षर चन्द्रकलाखण्ड है । सौम्य और चन्द्रकलाखण्ड के मध्य में ब्रह्म ग्रन्थिस्थानीय हृल्लेखा- बीज है । सौम्य, सौर और अनलात्मकता के अतिरिक्त – ज्ञान, इच्छा और क्रिया; जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति; विश्व, तैजस और प्राज्ञ; तम, रज और सत्त्व - इन त्रिरूपों में भी खण्ड विभाग समझना चाहिए | रमा बीजात्मक चन्द्रकलाक्षरसंयुक्त पंचदशाक्षरी विद्या में सोलह चन्द्रकलाएँ, सूर्य की चौबीस और अग्नि की दश कलाएँ आ जाती हैं। ये पचास कलाएँ ही मातृका वर्ण हैं और पञ्चदशाक्षरी मन्त्र के अन्तर्भूत हैं-

" षोडशेन्दो : कला भानो: द्विद्वदिश दशानले ।

सा पञ्चाशतकला ज्ञेया मातृकाचक्ररूपिणी ।

"एता: पञ्चाशत्कला: पञ्चाशद्वर्णात्मिका: पञ्चदशाक्षरीमन्त्रे अन्तर्भूताः। तथा आदिमेन ककारेणान्तिमो लकार: प्रत्याहृतः तन्मध्यवर्तनां वर्णानां ग्राहकः। अयमेव लकार एकारपूर्ववर्तिना अकारेण प्रत्याहृतः पञ्चाशद्वर्णग्राहकः।

लक्ष्मीधरा टीका, पृ० १२१ श्रीरङ्गमसंस्करण

इस विद्या में आये हुए ककारादि वर्ण - षोडश स्वर और तिथिरूप त्रिपुरसुन्दरी आदि नित्याओं(महात्रिपुरसुन्दरी, कामेश्वरी भगमालिनी नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महाविद्येश्वरी (महावज्रेश्वरी) शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्या, नीलपताका, विजया, सर्वमङ्गला, ज्वालामालिनिका, चित्रा) के प्रकृतिभूत हैं। पञ्चदशाक्षरीविद्यागतकलात्मक प्रत्याहार से किस प्रकार पचास वर्णों का संग्रह होता है यह अग्रिम विवरण से स्पष्ट हो जायगा । वस्तुत इस विद्या में 'क' से लेकर 'ल' पर्यन्त कला शब्दवाच्यता को गौण समझना चाहिए। क्योंकि व्यंजन, स्वरों के अङ्गरूप ही होते हैं । कलाओं (व्यञ्जनों) में स्वर की प्रधानता है - इस प्रकार गुणप्रधान भावप्रदर्शन के लिए इसमें दो प्रत्याहारों का आश्रय लिया गया है जो सनत्कुमार आदि को अभीष्ट है और उनकी संहिता में प्रतिपादित है । दूसरे प्रत्याहार 'अल्' से सभी वर्ण गृहीत होते हैं क्षकार क ष का समुदित रूप है। इतना संकेत प्रकृत प्रसङ्ग में पर्याप्त होगा | पुण्यानन्द ने इन सभी बातों को दृष्टि रखते हुए वैखरी को पश्चदशाक्षरमयी कहा है ।

वैखरी वर्णों का वासनात्मक सूक्ष्मरूप ही मध्यमा वाणी है। वैखरी में वर्ण स्थूल होते हैं यहाँ वर्ण सूक्ष्मरूप से विद्यमान रहते हैं। मध्यमा वाक् हिरण्यगर्भ शब्द है । इसकी तांत्रिकी संज्ञा नाद भी है । पूर्वोक्त शब्दब्रह्म वायुके द्वारा नाभि से हृदयपर्यन्त अभिव्यक्त होता हुआ निश्चयात्मिका बुद्धि से युक्त होकर विशेष स्पन्द प्रकाशरूप नादमय वाक् के नाम से कहा जाता है । इसमें विद्यमान प्रकाशांश को ज्येष्ठाशक्ति और विमर्शांश को ज्ञानशक्ति कहते हैं-

प्रकाशस्यांशभूता वामाज्येष्ठारौद्रय शक्तियस्तिस्रो ब्रह्मविष्णुरुद्राः पुंरूपाः। तत्समष्टिः शान्तात्मिका शक्तिस्तुरीया विमर्शस्यांशभूताः इच्छाज्ञानक्रियाः।
वरिवस्या०, पृ० ४२

शब्द संसार की स्थापना मध्यमा द्वारा ही होती है । मध्यमा वाणी की संघटक शक्तियाँ है : - विष्णुपर्याय ज्येष्ठा शक्ति तथा विष्णुशक्ति पृथिवी के पर्यायस्वरूप ज्ञानशक्ति। इसीलिए वह वाणी विश्व स्थिति में कारण बनती है |

महात्रिकोण में यह ऋजु रेखा का कार्य करती है ।
ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा सध्यमा वागुदीरिता ।

ऋजुरेखामयी विश्वस्थितौ प्रथितविग्रहा ॥ ३८ ॥

नित्याषोडशिकार्णव ६ विश्राम

पद्मपदाचार्य ने मध्यमा' शब्द की व्युत्पत्ति '**मध्ये मा बुद्धिर्यस्याः सा '** (प्रपञ्चसा० त० विवरण) इस प्रकार की है । वे कहते हैं - 'मध्यमा वाणी बाह्य अन्तःकरणाद्यात्मक है; यह हिरण्यगर्भ रूप विन्दुतत्त्वमय, नाभि ले लेकर हृदयपर्यन्त स्थान में जिसकी अभिव्यक्ति होती है तथा विशेष स्पन्दसङ्कल्पादिरूप है-

अथ बाह्यान्तःकरणाद्यात्मिका हिरण्यगर्भरूपिणीं बिन्दुतत्त्वमयीं नाभ्यादिहृदयान्ताभिव्यक्तिस्थान विशेषस्पन्दसङ्कल्पादिसतत्त्वात् मध्यमां वाचमाह |

प्र० सा० तन्त्र टीका, पटल २, पृ० ३३

वहीं आचार्य भास्कर राय की व्युत्पत्ति इस प्रकार है-

मध्ये स्थिता मध्यमा । तदुक्तं -

'पश्यन्तीव न केवलमुत्तीर्णा नापि वैखरीव बहिः ।
स्फुटतरनिखिलावयवा वाग्रूपा मध्यमा तयोरस्मात् ।।

सौ० भा०

भास्करराय इसे नादमयी कहते हैं-

अथ तदेव शब्दब्रह्म तेनैव वायुना हृदयपर्यन्तमभिव्यज्यमानं निश्चयात्मिभया बुद्ध्या युक्तं विशेषस्पन्दप्रकाशरूपनादमयं सन्मध्यमा वागित्युच्यते ।

(भास्करराय सौभा० भा० पृ० ९९)

और आचार्य पद्मपाद बिन्दुमयी | वस्तुतः बिन्दुमयी कहना विचारणीय है क्योंकि इस प्रकार -

"स बिन्दुनादबीजत्वभेदेन च निगद्यते ।"

(प्रपञ्चसा० प्र० पटल ४३ श्लोक)

इस मूल सन्दर्भ से विरोध पड़ता है । शारदातिलक तंत्र के प्रथम पटलगत एक सौ नवें श्लोक की व्याख्या में राघवभट्ट ने मध्यमा को 'नादबिन्दुमयी' लिखा है और साथ

ही किसी अज्ञातकर्तृक ग्रन्थ को भी उद्धृत किया है जिसमें 'नादरूपिणी" का ही उल्लेख है-

सैव हृत्पङ्ङ्कजं प्राप्य मध्यमा नादरूपिणी ।

राघवभट्ट, प्र० पटल, पृ० ९०

किन्तु 'शारदातिलक' के मूल में कहा गया है -

'बिन्दुर्नादो बोजमिति तस्य भेदा: समीरिताः ॥ ८ ॥

प्रथम पटल ।

पर्याप्त अनुशीलन से ज्ञात होता है कि यहाँ (इस श्लोक में) क्रम अविवक्षित है-

अथवा दृष्टिभेद ही इसमें कारण है। यहाँ यह ध्यान रहना चाहिए कि बिन्दु पश्यन्ती और नाद मध्यमा का बोधक है। किन्तु ये नादबिन्दु कार्यरूप हैं। कारणात्मक नादबिन्दु की चर्चा आगे की जायगी।

'एतौ नादबिन्दू प्रथमोक्तनादबिन्दुभ्यामन्यो तत्कार्यरूपौ ज्ञेयौ । तदुक्तं – स बिन्दुर्भवति शिधा |

आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

राघवभट्ट, प्रथम पटल, पृ० १७

सत्य तो यह है कि मध्यमा को नाद और ध्वनि आदि पदों से बोधित किया जाता है । मध्यमा के दो भेद होते हैं - प्रथम सूक्ष्म और द्वितीय स्थूल । सूक्ष्म से ही स्थूल का उद्भव होता है-

द्विविधा मध्यमा सा सूक्ष्मस्थूलाकृतिः स्थिता सूक्ष्मा |

नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा च भूतलिप्यात्मा ॥ २७ ||

आद्या कारणमन्या कार्यं त्वनयोर्यस्ततो हेतोः ।

संचेयं नहि भेदस्तादात्म्यं हेतुहेतुमदभीष्टम् ॥ २८ ॥

सूक्ष्म नवनादमय है, स्थूल नववर्गात्मक तथा भूत लिपिस्वरूप है । नवनाद निम्नाङ्कित है :

१. चिणि २. चिणिचिणी ३. घण्टानाद ४. शङ्खनाद ५. तन्त्रीनाद ६. तालनाद ७. वेणुनाद ८. भेरीनाद ९. मृदङ्गनाद

ये नाद सामान्य श्रोत्र ग्राह्य नहीं हैं योगियों द्वारा इनका अनुभव किया जाता है-

"तत्र सूक्ष्मा समाधिबलेन अनुभूयमाना" ।

नवनादों की समष्टि को ही भास्करराय ने मध्यमा कहा है। यह परावाणी के सदृश न तो अत्यन्त सूक्ष्म है और न वैखरीवत् अत्यन्त स्थूल । अतः इसे मध्यमा कहा जाता है-

ततो नव नादा: अविकृतशून्यादयो जाता: तत्समष्टिश्च नादध्वन्यादिपदवाच्या नातिसूक्ष्मा परावन्नातिस्थूला वैखरीवदतो मध्यमाख्या मातृका मध्यमावयवरूपमविकृतशून्य स्पर्शनादध्वनिबिन्दु शक्तिबीजाक्षराख्यं नादनवकं मूलाधारादिषट्के नादे नादान्ते ब्रह्मरन्ध्रे च स्थितम् ।

वरिवस्यारहस्य अंश १. १० १७

पूर्वोक्त नव नादों से ही सूक्ष्म अ, क, च, ट, त, प, य, श, ल स्वरूप नववर्गात्मा स्थूल मध्यमा का जन्म होता है। इससे ही पुनः स्थूल अ, क, च आदि वर्णात्मा वैखरी जन्म ग्रहण करती है। कामकलाविलास की टीका में 'भूतलिप्यात्मा'

का अर्थ –

“भूताश्च ते लिपयश्च भूतलिपयः, अत्र लिपीनां भूतत्वं चेष्टाविशेषाक्षरन्यासाभिव्यङ्ग्यत्वम् ।" तच्च कल्पनामात्रमेव – अक्षराणां तेजोरूपात्मकत्वात् ।" (१० ३२) किया गया है ।

इससे चित्रलिपि का संकेत मिलता है। -

स्वच्छन्द ' तन्त्र में नाद, जो स्वयं अव्यक्त ध्वनिरूप है, आठ भेदों में व्यक्त है, ऐसा कहा गया है- १. घोष, २. राव, ३. स्वन, ४. शब्द, ५. स्फोट, ६. ध्वनि, ७. झाङ्कार, ८. ध्वकृति - ये आठ व्यक्त नाद हैं-

अष्टधा स तु देवेशि व्यक्तः शब्दप्रभेदतः ।

धोषो रावः स्वनः शब्दः स्फोटाख्यो ध्वनिरेव च ॥ ६ ॥

झाङ्कारो ध्वङ्कृतश्चैव अष्टौ शब्दाः प्रकीर्तिता ।

नवमस्तु महाशब्दः सर्वेषां व्यापदः स्मृतः ।। ७ ।

व्यक्त शब्द से लौकिक अभिव्यक्ति नहीं समझना चाहिए |

इसी बात को स्वच्छन्दोद्योत में 'धर्मशिवाचार्य' की पद्धति को उद्धृत करते हुए आचार्य क्षेमराज ने स्पष्ट किया है। वे कहते हैं: **“कर्ण और अङ्गुलि के सहयोग से दीप्त वह्निजनित शब्द के सदृश, सुना जानेवाला शब्द ही घोष है। उस घोष के अनन्तर काँसे के टूटने के तुल्य जो रूक्ष शब्द सुनाई देता है वही 'राव कहा जाता है। राव के परे बांस की ध्वनि के समान तथा निर्वातप्रदेश में सौम्यवर्षा के अनुरूप नाद ही । स्वन शब्दवाच्य है । आकाश में भ्रमरी रव के समान सम्पूर्ण शब्दों की जन्मभूमिरूप नाद को 'शब्द' की संज्ञा दी गई है। वाक्य को स्फुटरूप से अवगत करानेवाला, वर्णभेद का अवभासक नाद ही स्फोट है-**

श्रवणाङ्गुलिसंयोगाद्यः शब्दः सम्प्रवर्तते ।

दीप्तवह्निस्वनाभासः सः शब्दो घोष उच्यते ॥

तदन्तेऽनुभवो यस्य ईषन्मर्मविसर्पिणः ।

भिन्नकस्यांनिभो रूक्षः स रावः स्यात्तदन्तगः ।

ततो वंशध्वनिप्रख्यो निवाते सौम्यवर्षवत् ।

स नादः स्वप्न इत्युक्तस्तत्परः कथितो ह्यसौ ।

चतुर्थः स तु वै शब्दः सर्वशब्दभवारणिः ।

आत्मानं रावयन्नादः खे यथा भ्रमरीरवः |

वाक्यस्य स्फुटतां धत्ते वर्णभेदावभासकः ।

स्फोट इत्युदितो नादः पञ्चमः शास्तृभिस्ततः ।।

स्व० उद्योत, पटल ११,

श्रोत्र' को सुखद, अतितानधर्मी नाद को ध्वनि कहते हैं । विपञ्ची (वीणा) के पाँचवें तार के आघात से जैसा शब्द होता है ठीक वैसी ही ध्वनि होती है । वीणा के सम्पूर्ण तारों के आहत होने पर जैसा स्तब्ध और मृदु निनाद होता है झाङ्कार में भी वैसा ही देखा जाता है । चढ़े हुए मेघों की ध्वनि के समान, घण्टानाद का अनुकरण करनेवाला ध्वंकृत कहा गया है-

ततोऽतितानधमत्वान्नादः श्रोत्रसुखावहः ।

विपञ्च्याः पञ्चमी तन्त्रीं हत्वा तीव्रप्रयत्नतः।।

यथा व्यज्यत आकाशे स षष्ठो ध्वनिसंज्ञितः ॥

आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

सर्वतन्त्रीसमाघाताद्वीणायामिव साधु यः ।
मृदुस्तब्धं निनदति झाङ्कारः सप्तमस्त्वसौ ।
घण्टानिनादानुकृतिः कदाचिद्व्यज्यतेऽन्यथा ।
तुङ्गमेघध्वनिनिभः सोष्टमो ध्वङ्कृतः स्मृतः ।
स्व० उद्योत, ११ पटल,

ये आठ प्रकार के नाद उस नवम महानाद के भेदमात्र हैं जो सर्वत्र व्यापक रूप से विद्यमान है।

स्थूल, सूक्ष्म और परभेद से मध्यमा पुनः तीन प्रकार की होती है-

यत्तु चर्मावनद्धादि किञ्चित्तत्रैष यो ध्वनिः ।
स स्फुटास्फुट रूपत्वान्मध्यमा स्थूलरूपिणी ॥

तन्त्रा० ३/२४१

१. स्थूल मध्यमा – चमड़े से मढ़े हुए मृदंगादि में कराघात द्वारा जनित ध्वनि, स्थूल मध्यमा वाणी का विलास है । यह ध्वनि पश्यन्ती गत स्थूलता की अपेक्षा स्फुट होती है और वर्णादि विभाग के न होने से अस्फुट रूप भी । यही कारण है कि इसे मध्यमा शब्द द्वारा बोधित किया जाता है । अविभक्त स्वरमय होने के कारण इसमें अनुरञ्जकता रहती है । तालात्मक अविभाग रूप वादन में लोगों के परितुष्ट करने की शक्ति होती है। यह परितोष, स्थूल मध्यमा के द्वारा लोक में अनुभूत होता है ।

२. सूक्ष्म मध्यमा- -वादन की इच्छा के अनुसन्धान को सूक्ष्म मध्यमा कहते हैं । यह वाणी संवेदनामक मात्र होती है ।

३. परमध्यमा– उपाधि (वादन की इच्छा) रहित चिदात्मक स्वरूप ही परमध्यमा वाणी है ।

अक्रम शब्दब्रह्म, अर्थप्रतिपादन की इच्छा से, विवक्षा द्वारा उपलक्षित मनोविज्ञान का रूप ग्रहण करता है, बिन्दुनादसंज्ञक प्राणापानात्मक वायु के के क्रम से

उल्लसित होने पर वही मध्यमा वाणी के नाम से कहा जाता है-

आस्ते विज्ञानरूपत्वे स शब्दोऽथं विवक्षया ।

मध्यमा कथ्यते संव बिन्दुनादमरुत्क्रमात् ॥

शिवदृष्टि ६॥२॥

भर्तृहरि ने व्याकरणागम के **'वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चंतदद्भुतम्' ।** वाक्य० प० १४४ । की व्याख्या में महाभारत के आश्वमेधिक पर्व के अन्तर्गत ब्राह्मण' गीता को उद्धृत करते हुए कहा है: -

'बुद्धि जिसका उपादान है, क्रमरूपात्मा, प्राणवृत्ति से अतीत होकर मध्यमा वाणी प्रवृत्त होती है '-

केवलं बुद्धयुपादानक्रमरूपानुपातिनी ।

प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्तते ।

म०भा० आश्वमेधिकपर्व०

उन्होंने इसका और स्पष्टीकरण किया है:

अन्तःसन्निवेशयुक्त, क्रम न होने पर भी क्रम को ग्रहण किए हुए के सदृश, बुद्धिमात्र उपादान वाली, सूक्ष्म प्राणवृत्ति के पीछे रहने वाली, वाणी ही मध्यमा वाक् है ।

“मध्यमा त्वन्तःसन्निवेशिनी परिगृहीतक्रमेव बुद्धिमात्रोपादाना सूक्ष्मप्राणवृत्त्यनुगता"।

वाक्यपदीय टीका

पुर्यष्टकात्मक, (अर्थात् पञ्चतन्मात्र, मन बुद्धि और अहङ्कार) प्राणशक्ति की आधारभूत सुषुम्णा नाड़ी में विश्रान्त मन, बुद्धि और अहंकारात्मक अन्त:करण को जो विमर्श शक्ति प्रेरित करती है वही मध्यमा वाणी है । उससे प्रेरित होकर अन्त:करण, संकल्पन, निश्चय अभिमनन और विकल्पन रूप कार्यों में प्रवृत्त होता है । उस समय वह विमर्शमय वाणी, संकल्पात्मक ग्राह्य सङ्कल्पयितृरूप ग्राहक और – 'मैं चैत्र, घट की कल्पना कर रहा हूँ" –

इत्यादि वाचक शब्द के साथ, भेदयुक्त, स्फुट क्रम से उपरक्त होती है तब चिन्तन शब्द वाच्य वह, ज्ञानशक्ति एवं मध्यमा वाक् के नाम से कही जाती है-

अन्तःकरणं मनोबुद्ध्यहङ्कारलक्षणं मध्यभूमौ पुर्यष्टकात्मनि प्राणाधारे विश्रान्तं या विमर्शशक्तिः प्रेरयति सा मध्यमा वाक् । तत्प्रेरितं च तदन्तःकरणं सङ्कल्पने, निश्चये अभिमनने च स्वस्मिन् व्यापारे विकल्पनलक्षणे प्रवर्तते । तरकाले सा विमर्शमयी वाक् सङ्कल्प्यादिकं ग्राह्यं सङ्कल्पयित्रादिरूपं च ग्राहकं स्वेन अभिधानस्य - इमं घटमहं चैत्रः सङ्कल्पयामि इत्यादेर्वाचकस्प शब्दस्य भेदेन स्फुटेन क्रमेण आभुङ्क्ते गाढं परामृशति यतस्ततश्चिन्तनशब्दवाच्या मध्यभवत्वात् मध्यमा ज्ञानशक्तिरूपा । ई० प्र० विमर्शिनी, अ० १, विमर्श ५

पश्यन्ती वाक् ईश्वरतत्त्व है। मध्यमा को जहाँ माषशमिकोपमा (उड़द की छीमी के सदृश) क्रमात्मा होने पर भी ऐक्यभावापन्न कहा गया है, वहीं पश्यन्ती वाणी को वटधानिका (बीज) के तुल्य बताया गया है ।

तंत्रों में कार्यबिन्दु के नाम से इसी वाणी का उल्लेख मिलता है। कारण विन्दुस्वरूप, शब्दब्रह्म जब पवन प्रेरित होकर, नाभिदेश को प्राप्त होकर विमर्शात्मक मन से युक्त होता है तो उसे ही सामान्यस्पन्द प्रकाशरूप, कार्यबिन्दुमय पश्यन्ती वाक् की आख्या मिलती है-

अथ तदेव नाभिपर्यन्तमागच्छता तेन पवनेनाभिव्यक्तं विमर्शरूपेण मनसा युक्तं सामान्य स्पन्दप्रकाशरूपकार्यबिन्दुमयं सत्पश्यन्ती वागुच्यते ।

सौभाग्यभास्कर

पश्यन्तीवाणी में अवस्थित प्रकाशांश को वामाशक्ति और विमशशि को इच्छाशक्ति कहते हैं । महासत्तात्मक पराशक्ति अपने गर्भ में स्थित बीजभावापन विश्व का कार्यरूप में बाह्य प्रसार करने को जब उद्यत होती है तो उसमें विश्ववमनकर्तृत्व रहने के कारण उसे वामाशक्ति कहा जाता है । इसका पर्याय ही ब्रह्मा है । महात्रिकोण की वामरेखा का उपलक्षक होने के कारण इसे अंकुशाकार कहा गया है । पितामह ब्रह्मा की शक्ति – भारती के पर्यायरूप इच्छाशक्तयात्मक जनन सामर्थ्य

इसमें विद्यमान रहता है । वामा और इच्छा का समाहार ही पश्यन्ती में देखा जाता है-

बीजभावस्थितं विश्वं स्फुटीकतु यदोन्मुखी ।

वामा विश्वस्य वमनादङ्कुशाकारतां गता।। ३७ ।।

इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता।।

योगिनीहृदय

निर्विकार परा कला, जब स्रष्टव्य पदार्थों का आलोचन करती है तब **'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय'** (छा० उ० ६ - २ - ३) इस श्रुति के अनुकूल ईक्षणात्मक पश्यन्ती कही जाती है । करण सरणि (मार्ग) से ऊपर उठकर समग्र प्रपञ्च को यह शक्ति अपने में ही देखती है इसीलिए इसको पश्यन्ती और उत्तीर्णा भी कहते हैं-

पश्यतीति पश्यन्ती । अस्या एवोत्तीर्णेत्यपि संज्ञा | उक्तं च सौभाग्यसुधोदये – 'पश्यति सर्वं स्वात्मनि करणानां सरणिमपि युदुत्तीर्णा । तेनेयं पश्यन्तीत्युत्तीर्णेत्यप्युदीयंते माता ।' सौभाग्यभास्कर

भास्करराय ईक्षण, काम, तप और विचिकीर्षा शब्दों को समानार्थक मानते हैं अतः पश्यन्ती भी यही है-

ततः स्रष्टव्यपदार्थानालोचयति- 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' इति श्रुतेः । तादृशमीक्षणमेव प्रवृत्तिनिमित्तीकृत्य तस्यां पश्यन्तीति पदं प्रवर्तते ।- वरिवस्यारहस्य

राजानक जयरथ ने लिखा है कि परा परमेश्वरी ही अपने स्वातन्त्र्य से जब बाह्य रूपों को उन्मिषित करना चाहती है, तभी उसकी संज्ञा पश्यन्ती हो जाती है-

सैव हि परमेश्वरी स्वस्वातन्त्र्यात् बहीरूपता मुल्लिलासयिषुर्वाच्यवाचकक्रमानुदयाद्विभागस्यास्फुटत्वा च्चिज्ज्योतिष एव प्राधान्यात् द्रष्टृरूपतया पश्यन्तीति शब्दव्यपदेश्या । तन्त्रा० टी० तृ०अध्याय

उस समय वाच्य वाचक का क्रम उदित नहीं होता, विभाग अस्फुट ही रहता है । तत्काल चिज्ज्योति के प्राधान्य से उसकी द्रष्टृरूपता ही विद्यमान रहती है-

यह पश्यन्ती वाणी स्थूल, सूक्ष्म और पर भेद से तीन प्रकार की है-

स्थूल पश्यन्ती - षड्जादि स्वरों के मेल अथवा वर्णों के विभाग से रहित आलाप द्वारा माधुर्यातिशय या आह्लाद को प्रदान करने वाली प्राथमिक नादमात्र जिसका स्वभाव है ऐसी वाणी स्थूल पश्यन्ती है-

तत्र या स्वरसन्दर्भसुभगा नादरूपिणी |

सा स्थला खल पश्यन्ती वर्णाद्यप्रविभागतः ।

तं० आ०३/२३७

२. सूक्ष्म पश्यन्ती – जिगासा अथवा गाने की इच्छा का अनुसंधान ही पश्यन्ती का सूक्ष्म रूप है ।

३. पर पश्यन्ती – परचिदात्मक उपाधिहीन रूप ही पर पश्यन्ती है -

अस्मिन् स्थूलत्रये यत्तदनुसन्धानमादिवत्। २४५ ॥

पृथक् पृथक् तत्त्रितयं सूक्ष्ममित्यभिधीयते ।

षड्जं करोमि मधुरं वादयामि ब्रुवे वचः। २३६ ॥

पृथगेवानुसन्धानत्रयं संवेद्यते किल ।

एतस्यापि त्रयस्याद्यं यद्रूपमनुपाधिमत् ॥ २४७ ॥

तत्परं त्रितयं तत्र शिवः परचिदात्मकः ।

तं०आ०३/२४५-२४७

भर्तृहरि ने स्वोपज्ञ टीका में पश्यन्ती के विविध भेदों का - उल्लेख करते मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य हुए उसका पर रूप भी माना है। ऐसा उनके **'परं तु पश्यन्तीरूपमनपभ्रंशमसङ्कीर्णं लोकव्यवहारातीतम्'** इस सन्दर्भ द्वारा तथा **'चलाचला, आवृता सन्निविष्टज्ञेयाकारा परिच्छिन्नार्थं प्रत्यवभासा, संसृष्टार्थप्रत्यवभासा'** एवं साथ ही **प्रतिलब्धसमाधाना, विशुद्धा प्रतिलीनाकारा, निराकारा और प्रशान्तसर्वार्थप्रत्यवभासा** इन भेदों के द्वारा सर्वथा स्पष्ट है ।

पुनः आश्वमेधिक पर्वगत ब्राह्मणगीता को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा है :-

जिसमें वाच्यवाचक का विभाग नहीं है, क्रमरहित, स्वरूपज्योति अथवा स्वप्रकाश, अविनाशी सूक्ष्मवाक् ही पश्यन्ती है । नित्य आगन्तुक मलों से आकीर्यमाण होने पर भी चन्द्र की चरम कला के सदृश इसका अत्यन्त अभिभव नहीं होता। इसके स्वरूप का दर्शन हो जाने पर स्वर्गापवर्ग रूप अधिकार निवृत्त हो जाता है । षोडशकल पुरुष में इसे ही अमृता कला के नाम से कहा गया है-

अविभागातु पश्यन्ती सर्वतः संहृतक्रमा ।

स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा वागनपायिनी।।

संषा: सङ्कीर्यमाणाऽपि नित्यमागन्तुकैलंः।

अन्त्या कलेव सोमस्य नात्यन्तमभिभूयते।।

तस्यां दृष्टस्वरूपायामधिकारो निवर्तते।

पुरुषे षोडशकले तामाहुरभृतां कलाम्।।

व्याकरणागम' में वाणी के तीन स्वरूपों की स्थापना मिलती है । पश्यन्ती ही परा स्थिति है इसी का वहाँ अनादिनिधन शब्दब्रह्म के नाम से उल्लेख किया गया है-

वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्ताश्चैतदद्भुतम् ।

अनेकतीर्थभेदायास्त्रय्या वाचः परं पदम् ।

वाक्यपदीय, प्र० काण्ड १४३

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् |

विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥

वाक्यपदीय प्र० काण्ड

आचार्य सोमानन्दपाद ने शब्दपरब्रह्माद्वयवाद का खण्डन करते हुए पश्यन्ती का निम्नांकित व्याकरण सम्मत स्वरूप बताया है 'ईश्वराद्वयवाद में जो ज्ञान-शक्ति अथवा सदाशिवरूपता है वही वैयाकरणों की पश्यन्ती है जिसे वे

लोग परतत्त्व मानते हैं । यह अनादि अक्षय शब्दतत्त्व है, इसे पश्यन्ती संज्ञक परावाक् कहते हैं। वही शब्दब्रह्म सम्पूर्ण देहों में वर्तमान आत्मा है । ज्ञेयरूप शून्य चिन्मात्र उस शब्दतत्त्व को ही भोक्ता कहते हैं । यह दर्शन का निरतिशय स्थान अथवा पराकाष्ठा है । इन्द्रिय वृत्तियों से हीन, देश और कालकृत अवच्छेद से शून्य, क्रमात्मक संसार से रहित, अतएव ग्राह्य और ग्राहकात्मक आकार से वर्जित पश्यन्ती ही पराकाष्ठा, परमार्थ एवं परब्रह्म' है '-

अथास्माकं ज्ञानशक्तिर्या सदाशिवरूपता |

वैयाकरणसाधूनां पश्यन्ती सा परा स्थितिः ॥ १ ॥

इत्याहुस्ते परं ब्रह्म यदनादि तथाक्षयम् ।

तदक्षरं शब्दरूपं सा पश्यन्ती परा हि वाक् ॥ २ ॥

स एवात्मा सर्वदेहव्यापकत्वेन वर्तते ।

अन्तः पश्यदवस्थैव चिद्रूपत्वमरूपकम् || ३ ||

तावद्यावत्परा काष्ठा यावत्पश्यत्यनन्तकम् ।

अक्षादिवृत्तिभिर्हीनं देशकाला दिशून्यकम् ॥ ४ ॥

सर्वतः क्रमसंहारमात्रमाकारवर्जितम् ।

ब्रह्मतत्त्वं परा काष्ठा परमार्थस्तदेव सः ।। ५ ।।

आचार्य अभिनवगुप्त ने पश्यन्ती, महापश्यन्ती तथा परम महापश्यन्ती की भी चर्चा की है । सदाशिवेश्वर दशा महापश्यन्ती है । **'गृहात् निःसरामि'** आदि परामर्श, मायाप्रमातृ (जीव) गत पश्यन्ती का बोध कराते हैं । परममहापश्यन्ती ही परा वाक् है । पश्यन्तीवाणी में, ग्राह्य और ग्राहकगत अभिधान और अभिधेय का देश और कलाकृत क्रम, स्फुट रूप से नहीं रहता। क्योंकि पश्यन्ती दशात्मक विमर्श, निर्विकल्पक स्वभाव वाला होता है। स्वयं अक्रम होने के कारण अविभक्त, एवं अन्तर्लीन क्रमात्मक विभाग को आच्छादित करके अवस्थित रहता है । ग्राह्य और ग्राहक से उत्पन्न क्रम इसके द्वारा अथवा इसमें अन्तःसङ्कुचित रहता है, अतः इसे प्रतिसंहृतक्रम कहते हैं। 'सरः' 'रसः' आदि पदों तथा 'देवदत्त सुरग' आदि वाक्यों का क्रम सङ्कोचनात्मक पिण्डीकरण जिसके द्वारा सम्पन्न होता है वह पदवाक्यात्मक अभिजल्प

(शब्दन) सूत्रात्मक शरीरधारी होने के कारण 'सूक्ष्म' कहा जाता है । प्रतिसंहृतक्रमा एवं सूक्ष्मा, यह पश्यन्ती वाक् इच्छाशक्ति रूप मानी गई है।

आचार्य सोमानन्द पश्यन्ती को ज्ञानशक्ति कहते हैं तथा तन्त्र एवं अभिनवगुप्त इसे इच्छाशक्ति घोषित करते हैं। ऐसी स्थिति में यहाँ सन्देह की संभावना मन्त्र और है । किन्तु सच्चाई यह नहीं है । इच्छाशक्ति वस्तुत: ज्ञान और क्रियाशक्ति की अनुग्राहिका बीजावस्था है। और जानने की इच्छा (बुभुत्सा) भी बोधस्वभाव ही होती है । इच्छाशक्ति में बोध्य वस्तु का पूर्णरूप से प्रकाशन होता है-

'इयमेव च इच्छाशक्तिरूपेति दर्शयति कार्यचिकीर्षा इति । बोध्यबुभुत्सास्वभावा अपि इयं भवति, अतश्च एवं - यदिच्छाशक्तिर्ज्ञानक्रियाशक्त्योरनुग्राहिका इति, किन्तु बुभुत्सा अपि बोधस्वभावव सस्य वस्तुनस्तत्र अवभासपरिपूर्णतथा प्रकाशनात् ।'

ई० प्र० वि० अ० १, वि० ५,

इसके अतिरिक्त आचार्य उत्पल ने इसमें ज्ञानशक्तिरूपता को उपचरित माना है-

पश्यन्तीति दर्शनप्राधान्यात् उपचरितज्ञानशक्तिरूपत्वेप्याश्रीयमाणे परमशिवरूपताया अत्यन्तदूरवर्तिनी, न तु पर्यन्तदशासौ, ज्ञानशक्तेः सदाशिवरूपत्वात् परापरव्यवस्थात्र। सदाशिवरूपत्वे च क्रियाशक्तिरपि न परित्यक्ता।

शिवदृ०, द्वि०अ०

परावाणी शब्द की चरम अवस्था है। इसी को अतिक्रम करके परब्रह्म अथवा परमशिव पदवी की उपलब्धि होती है । पूर्ण होने के कारण इसे परा कहते हैं-

पूर्णत्वात् परा (ई० प्र० वि०)

समस्त विश्व के आस्वादात्मक चमत्काररूप प्रत्यवमर्श द्वारा, कथन करने के कारण इसे वाक् की संज्ञा दी गई है-

वक्ति, विश्वम् अपलपति प्रत्यवमशन इति च वाक् ।

यह कथन संकेत निरपेक्ष, अविच्छिन्न चमत्कार अर्थात् निज भोग परामर्शात्मक अन्तर्मुखशिरोनिर्देश स्वरूप एवं

अकारादि मायीय सांकेतिक शब्द का जीवनभूत है-

चमतो भुञ्जानस्य करणं संरम्भः अहमसौ नीलादेर्भोक्ता इति चमकारः। अनुपचरितस्य संवेदनरूपतानान्तरीयकत्वेनावस्थितस्य स्वतन्त्रस्यैव रसनैकघनतया परामर्शः परमानन्दो निवृतिश्चमत्कार उच्यते ।"

यह परावाणी, चिद्रप, स्वात्मविश्रान्त 'अहं' इस रूप में नित्य उदित परमात्मा के मुख्य स्वातन्त्र्य रूप से अनन्यापेक्ष होकर वर्तमान रहती है। अन्यनिरपेक्षता और स्वरसवाहिता ही आनन्द, ऐश्वर्य, स्वातन्त्र्य और चैतन्य है | देश, काल से अविशिष्ट यह वाणी स्वतःसिद्ध महासत्ता के नाम से कही गई है । इसे, परमेष्ठी परमशिव का परमन्त्रात्मक विमर्शरूप हृदय कहा गया है । मन्त्र ही समग्र का हृदयभूत है । विमर्श के अतिरिक्त मन्त्र का और कोई स्वरूप नहीं और विमर्शन परावाङ्मय है अतएव सार भी ।

सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालाविशेषिणो।

संषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः ||१४॥

संसार का जो सार है वही परावारूप मालिनी शक्ति भी है। यही मन्त्रों की जननी है ।

परा तुरीयतत्त्व है । यह अव्यक्तसंज्ञक शब्द है । जगद्रूप अंकुर के लिए कन्दात्मक होने के कारण यह परावाक् कारण बिन्दु के नाम से उल्लिखित हुई है। स्वप्रतिष्ठ होने से यह शब्दब्रह्मरूप परा वाणी निःस्पन्द मानी जाती है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियाँ यहाँ समष्टिरूप में विद्यमान रहती हैं । परा वाणी में वर्तमान प्रकाशांश को अम्बिका और विमशश को शांता कहते हैं ।

आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।

अम्बिकारूपमापन्ना परावावसमुदीरिता ॥३६॥

योगिनीहृदय १

इसी परा वाणी में सम्पूर्ण वाच्य वाचक वैचित्र्य मयूराण्डरस के सदृश अनभिव्यक्त रूप में अभेदापन्न

होकर विद्यमान रहता है । -

'मूलाधारात् प्रथममुदितो यश्च भावः पराख्य:' द्वितीयपटलगत प्रपञ्चसार के उपर्युक्त श्लोक की व्याख्या करते हुए पद्मपादाचार्य ने कहा है : - मूल शब्द का अर्थ है जगन्मूलभूत परिणामिनी मायाशक्ति और उसके आधारभूत चिदात्मा को मूलाधार कहते हैं । शरीरगत मूलाधार भी सर्वगत चिदात्मा की अभिव्यक्ति का स्थान होने के कारण मूलाधार कहा जाता है। उससे उत्पन्न चैतन्याभास और मायाशक्त्यात्मक भाव परावाक् है-

मूलं जगन्मूलभूता परिणामिनी मायाशक्तिः | तस्याः आधारभूतश्चिदात्मा मूलाधार: । सर्वगस्थापि तस्याभिव्यक्तिस्थानत्वात् गुदमेमध्योऽपि मूलाधारः। तस्मात् प्रथममुदितः चैतन्याभासः भावश्च यः जगद्भावयतीति माया शक्तिर्भाव: स पराख्यः । चैतन्याभासविशिष्टतया प्रकाशिका माया निष्पन्दा परा वागित्यर्थः ।

राघवभट्ट ने भी लिखा है-

चित्' शक्ति ही परा है । अथवा चैतन्यभासविशिष्ट होने के

कारण प्रकाशिका माया ही स्पन्दहीन परा वाक् है-

अथवा चिच्छक्तिरेव पराख्या चैतन्याभासविशिष्टतया प्रकाशिका माया निष्पन्दा परा वागित्यर्थः |(पदार्थादर्श)

वेदान्त दृष्टि से ही उपर्युक्त दोनों व्याख्याएँ प्रभावित हैं ऐसा प्रतीत होता है । यद्यपि राघवभट्ट तन्त्रसम्मत व्याख्या विकल्प देना नहीं भूले। शाक्ताद्वैतवाद अथवा ईश्वराद्वयवाद में माया प्रकृति आदि परावाक् से निम्नतर के तत्त्व हैं । माया से यदि महामाया अभिप्रेत हो तो द्वैतवादी तंत्रों के अनुसार यह शिव की परिग्रहरूपा बिन्दु शक्ति है और इसे ही परावाक् कहा जा सकता है ।

आचार्य पद्मपाद ने तो वाणी के पञ्चपदी और सप्तपदी होने की भी सूचना दी है। यथा - (१) सूक्ष्मा, (२) परा, (३) पश्यन्ती, (४) मध्यमा, (५) वैखरी ।

(१) शून्य, (२) संवित्, (३) सूक्ष्मा, (४) परा, (५) पश्यन्ती, (६) मध्यमा, (७) वैखरी । शून्य - अनुत्पन्न, स्पंदहीन वाणी । संवित् – उत्पन्न होने की इच्छा वाली । सूक्ष्मा –

उत्पत्त्यवस्था । परा - मूलाधार में प्रथम - उदित-

अथवा सूक्ष्मा, परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरीति पञ्चपदीं वाचमाश्रियाह मूलाधारादिति। सप्तपद्यपि वागनेनैव सूचिता शून्यसंवित्सूक्ष्मादीनि सप्तपदानि। तत्रानुत्पन्ना निष्पन्दा शून्या। वागुत्पित्सु संवित्। उत्पत्त्यवस्था सूक्ष्मा मूलाधारात् प्रथममुदिता परेति विभागः।

प्रपञ्चसार टीका, द्वि० पटल

ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य श्री ने स्वच्छन्द तन्त्र के -

तस्माच्छून्यं समुत्पन्नं शून्यात्स्पर्शसमुद्भवः ।

तस्मान्नादः समुत्पन्नः पूर्वं वं कथितस्तव" ॥

श्लो० ५, १० ११

इसके अनुसार सात प्रकार की वाणी की चर्चा की है । सिद्धान्ततः इसमें कोई असंगति नहीं है । वहाँ शून्य से व्यापिनी, स्पर्श से शक्ति आदि का ग्रहण किया गया है ।

|

लक्ष्मीधर ने सौन्दर्यलहरी की टीका करते हुए परावाणी को ही प्रकृति कहा है-

एका परेति सत्त्वरजस्तमोगुणसाम्यरूपा। तदन्या पश्यन्ती अन्यतरगुणवैषम्यरूपेत्यर्थः । (सौन्दर्यलहरी श्लोक ३४ की टीका)

सत्व, रज और तम की साम्यावस्था परा है और वैषम्यावस्था पश्यन्ती ।

इसमें सन्देह नहीं है कि सत्व, रज और तम क्रमश: ज्ञान, इच्छा और क्रिया के प्रतीक हैं। किन्तु सांख्य में जिस प्रकृति का वर्णन है वह अत्यन्त स्थूल है । यह अशुद्ध प्रकृति है । परा को शुद्धप्रकृति कहा जा सकता है । शुद्धप्रकृति में इच्छा आदि शक्तिरूप से विद्यमान रहते हैं | ईश्वर प्रत्यभिज्ञा में स्पष्टतया कहा गया है कि पतिदशा में जो ज्ञान, क्रिया और मायाशक्ति है, वही पशुदशा में सत्त्व,

रज और तम है-

स्वाङ्गरूपेषु भावेषु पत्युर्ज्ञानं क्रिया च या ।

मायातृतीये ते एव पशोः सत्त्वं रजस्तमः।। ४.४ ।।

इच्छादि शक्तियाँ ही संकुचित होकर सत्वादि के रूप में प्रतीत होती हैं-

इच्छादित्रिसमष्टिः शक्तिः शान्तास्य सङ्कुचद्रूपा ।

सङ्कलितेच्छाद्यात्मकसत्त्वादिकसाम्यरूपिणी सती ।

बुद्ध्या दिसामरस्यस्वरूपचित्तात्मिका मता प्रकृतिः ।

तत्त्वसन्दोह १०/१३.१४

सांख्यकारिका में तो नहीं किन्तु योगसूत्रों पर भाष्य करते हुए व्यास ने कहा है :

गुणानां परमं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति ।

यत्तु दृष्टिपथं प्राप्तं तन्मायेव सुतुच्छकम् ।।

अर्थात् 'गुणों का परम रूप देखने में नहीं आता, जो

दिखाई देता है वह तो माया की तरह तुच्छ है ।'

इससे प्रतीत होता है कि गुणों का प्रत्यक्ष और मानस से परे उत्कृष्ट रूप भी है जिसका ज्ञान सांख्यदर्शनमात्र से नहीं हो सकता । तन्त्रों एवं पुराणों में ही उसका वर्णन मिलता है ।

वस्तुत: मूल महाप्रकृति जिसे परावाक् भी कहा जा सकता है एक ऐसा 'साँचा' है जिससे अनन्त विश्व वैचित्र्य प्रादुर्भूत होता रहता है और उसमें किसी प्रकार का विकार नहीं होता ।

व्याकरणागम में सूक्ष्म शब्द को संज्ञा या चेतना कहा गया है-

सैषा संसारिणां संज्ञा बहिरन्तश्च वर्तते ।

तन्मात्रामप्यतिक्रान्ते चैतन्यं सर्वजन्तुषु ॥ १२७।।

शब्देष्वेवाश्रिता शक्तिविश्वस्यास्य निबन्धिनी |

यन्नेत्रः प्रतिभात्मायं भेदरूपः प्रतीयते ।। ११९ ।।

वा०प० का० १

अपि प्रयोक्तुरात्मानं शब्दमन्तरवस्थितम् ।

प्राहुर्महान्तमृषभं येन सायुज्यमिष्यते ॥ १३२ ॥

वा०प० का० १

परा प्रकृतिरूप चिन्मयी वाणी, अनन्त प्रमेयात्मक गवादि आकारों को धारण करती है । प्रतिभात्मक परावाणी की उपासना करने वाले लोग ही मृत्यु का अतिवर्तन करते हैं-

भेदोद्ग्राहविवर्तेन लब्धाकारपरिग्रहा।

आम्नाता सर्वविद्यासु वागेव प्रकृतिः परा ।।

एकत्वमभिनिष्क्रान्ता वाङ्नेत्रा वाङ् निबन्धनाः ।

पृथग्वदवभासन्ते वाग्विभागा गवादयः।।

षड्वारां षडधिष्ठानां षट्प्रबोधां षडव्ययाम्।

ते मृत्युमतिवर्तन्ते ये वैं वाचमुपासते।।

वाक्यपदीय,ब्रह्मकाण्ड, स्वोपज्ञटीका

तन्त्र मत में प्रतिभा भी परावाणी का नामान्तर है । परमेश्वर की विश्व रचना के प्रति अन्यनिरपेक्षता को ही परा अथवा प्रतिभादेवी कहते हैं । यह प्रतिभा निरतिशय

स्वातन्त्र्य (आनन्द) के चमत्कार (भोग) से पूर्ण है । इसमें विद्यमान प्रकाशांश वाच्यों – अनन्त गो घटादि अर्थों और विमर्शांश वर्गों, पदों, वाक्यों के रूप में स्फुरित होता है। यह प्रतिभा चित्स्वभावतामात्र, स्वरसोदित परावाक् रूप ही है । इसमें किसी प्रकार के सङ्कोचरूपी कलङ्क की कलुषता का लेश भी नहीं रहता। भैरवभट्टारिकात्मक इस महासंवित् में सम्पूर्ण चराचर जगत् पारमार्थिक अनपायी रूप से वीर्यमात्र सार अवस्था में विद्यमान रहता है-

'सा' च परमेश्वरी पराभट्टारिका तथाविधनिरतिशयाभेदभागिन्यपि पश्यन्त्यादिकाः परापराभट्टारिकादिस्फाररूपा अन्तःकृत्य तत्तदनन्त वैचित्र्यगर्भमयी परामृशते च प्रथमां प्रतिभाभिधानां सङ्कोचकलङ्ककालुष्यलेशशून्यां भगवतीं संविदम् ॥

परात्रिंशिका, पृ० १०२

निखिल वैषयिक अवबोध के पूर्व और अपरान्तचारी,

समस्त विश्वात्मक, परशक्तिप्रभारूप प्रतिभा में निमग्न होने पर अभावजनित ग्लानि घटित नहीं होती। अपरिच्छिन्न स्वभाव होने पर भी अखण्ड पारमेश्वरी प्रतिभा सर्वात्मक है।

“एकैव सा पारमेश्वरी प्रतिभा अस्मदुक्तिमाहात्म्यकल्पिता एवं विधा अपरिच्छिन्नस्वभावाऽपि सर्वात्मैव ।"

परात्रिंशिका, पृ० १०८

शुद्ध' संविन्मात्र, प्रकाशपरमार्थ अतितुर्य तत्त्व, सम्पूर्ण प्रमेयात्मक विश्व को अपने से पृथक् करके सकल भावों से उत्तीर्ण निरावरण रूप में विद्यमान रहता है । महासंवित् की यह शन्यावस्था है। उसे ही निष्कल परमशिव के नाम से कहा जाता है । 'नेति' 'नेति' द्वारा जिस दशा का बोध कराया जाता है यही वह उत्तीर्ण दशा है जो योगियों का चरमकाम्य है-

संविन्मात्रं हि यच्छुद्धं प्रकाशपरमार्थकम् ।

तन्मेयमात्मनः प्रोज्य विविक्तं भासते नभः ॥ ९ ॥

तदेव शून्यरूपत्वं संविदः परिगीयते ।।

आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

नेति नेति विमर्शन योगिनां सा परा दशा ॥ १० ॥

तं० आ० ६

सम्पूर्ण विश्वगत भावों के क्षीण या तदन्तर्भूत होने से इसे शून्य कहा जाता है। इस प्रकार अशून्य या चरम सत्ता ही शून्य है-

अशून्यं शून्यमित्युक्तं शून्यं चाभाव उच्यते ।

अभाव: स समुद्दिष्टो यत्र भावाः क्षयं गताः ।

स्वच्छन्द त० ४। २९१

विविक्त नभ के सदृश शोभित वह परमशिव बहिर्मुख होने की इच्छा से किञ्चित् चलित होता है । यह चलन उसका आद्य प्रसार है। इसको स्पन्द, प्राण और ऊर्मि की संज्ञा दी जाती है । परमशिव रूप पर संवित् का यह प्रथम स्पन्द, स्फुरत्ता अथवा प्रतिभा नामक परा वाक् है जो अनन्त अपरिमित प्रमातृ-प्रमेयों का उद्भवस्थान है ।

स एव स्वात्मा मेयेऽस्मिन् भेदिते स्वोकियोन्मुखः ।

आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

पतनसमुच्छलत्वेन प्राणस्पन्दोर्मिसंज्ञितः।। ११।।

इयं सा प्राणनाशक्तिरान्तरोद्योगदोहदा।

स्पन्दः स्फुरत्ता विश्रान्तिर्जीवो हृत्प्रतिभा मता।। ३३।।

तन्त्रालोक आ० ६

'स्वपदशक्तिः' (१७) प्रथ० प्रकाश इस शिवसूत्र की व्याख्या करते हुए आचार्य भास्कर ने कहा है "दृक्रियारूपप्रतिभा' ही स्वपदात्मक शिव की शक्ति है । विश्वाकार वैचित्र्य के धारण की योग्यता को क्रियाशक्ति और प्राण या प्रकाश को दृक्शक्ति कहते हैं"-

स्वपदं सत्पदं ज्ञेयं शिवाख्यं यदुदीरितम् ॥ ७६ ॥

तद्वीर्य दृक् क्रियारूपं यत्सा शक्तिः प्रकीर्तिता ।

तस्याः कर्त्रंशसंवेशो लीनता स्यात् स्थितिश्च सा ॥ ७७ ॥

तदेव प्रतिभालोकः स्यात्प्रकाशकमन्थरः ।

स वितर्कः स्वस्वभावविमर्शैकघनात्मनः ॥

आत्मनः शिवरूपस्य प्रत्यभिज्ञाप्रसाधने ॥ ७६ ॥

परं तत्साधनं ज्ञेयं तस्मिन् सत्यात्मवेदनम् ।

तस्माद्वा प्रतिभोन्मेषः स्याच्छुद्धस्यात्मनः परः ॥ ८० ॥

शिव सू० वा० प्रथम प्रकाश

प्रतिभाएँ व्यक्तिभेद से नाना हो सकती हैं किन्तु उनका समन्वय पर प्रतिभा में ही होता है जिसका उल्लेख ऊपर स्थित पद्य में किया गया है । महावैयाकरण हेलाराज ने वाक्यपदीय के तृतीयकाण्ड की टीका का मङ्गलाचरण करते हुए कहा है-

"जिसके सम्मुख आते ही प्रकाशात्मक पुरुष की अभिनव रुचिर महिमा, मन के अन्तराल में निकट रूप से, स्फुरित होती है । तथा विषयास्वाद से असम्पृक्त होने पर भी जो शाश्वत, परमतृप्ति प्रदान करता है, तेज और आनन्द के अमृत से परिपुष्ट उस प्रातिभ वपु की मैं स्तुति करता हूँ"।

यस्मिन्सम्मुखतां प्रयाति रुचिरं कोप्यन्तरुज्जृम्भते

नेदीयान् महिमा मनस्यभिनवः पुंसः प्रकाशात्मनः ।

तृप्तिं यत्परमां तनोति विषयास्वादं विना शाश्वतीं

धामानन्दसुधामयोजितव पुस्तत्प्रातिभं संस्तुमः।।

के इस श्लोक तथा स्वोपज्ञ टीका में उद्धृत 'संग्रह' के -

'अविभक्तो विभक्तेभ्यो जायतेऽर्थस्य वाचकः ।

शब्दस्तत्रार्थरूपात्मा सम्भेदमुपगच्छति ॥'

परावाणी अथवा प्रतिभात्मक तुरीय तत्त्व का तुरीयातीत तत्त्व से सम्बन्ध बताते हुए उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्त ने निम्नांकित विवरण प्रस्तुत किया है । 'प्रतिभाति घटः' घट प्रतीत होता है - आदि स्थलों में प्रतिभानात्मकक्रिया, यद्यपि विषय का आलिङ्गन करती हुई लक्षित होती है किन्तु यह क्रिया उस विषय की अपनी ज्योति नहीं है । संवेदन मात्र हो, जो कि प्रमातृनिष्ठ होता है, 'मां प्रतिभाति' इस रूप में स्फुरित होता है । श्रुति कहती है –

'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्' । (क० उ०५/१५) 'भान्तं' इस शब्द द्वारा अतितुर्य तत्त्व की सतत् प्रकाशशीलता तथा 'अनुभाति' के 'अनु' ; शब्द द्वारा अतितुर्य तत्त्व के स्वातन्त्र्य से रचित निर्माणक्रिया से उत्पन्न वेद्य-वेदकभाव

रूप सम्बन्ध द्योतित होता है ।

पश्यतो रूपमालेखात् भातो भानानुषङ्ग यत् ।

प्रतीपभानं प्रतिभा भावानामात्मसंश्रया ॥

ई० प्र० वि० १.७

'आत्मसंश्रया' इस शब्द द्वारा प्रतिभा की संवित् विश्रान्तता ही सिद्ध होती है। केवल विषयोल्लेख के अनुषङ्ग से संवेदनात्मकप्रतिभान, क्रम और योगपद्यादि धर्मों को धारण करता है । अतएव बीज, अङ्कुर, काण्ड, शाखा आदि कर्मों तथा 'ये गायें' आदि में दृष्ट अक्रम या युगपद्भावों से विचित्ररूप पदार्थों का ईश्वर स्वातन्त्र्यरूप देश-काल-शक्ति से उत्थापित क्रम अथवा देशकाल परिपाटी से (रूषित) - ऊपरक्त प्रतिभा ही सब के लिए सर्वदा स्वप्रकाश, तथा अन्तर्मुखरूप में देशकालकलना हीन होने के कारण अक्रम कही जाती है । और यह अक्रमा प्रतिभा परप्रमाता महेश्वर से भिन्न नहीं । -

या चैषा प्रतिभा तत्तत्पदार्थक्रमरूषिता ।

अक्रमानन्तचिद्रूपः प्रमाता स महेश्वरः ॥ १ ॥

ई० प्रत्यभिज्ञा कारिका १.७

देशकालादिपरिच्छेदविरहित- संवित्स्वभाव: प्रमाणप्रमिति-समूहस्य यथारुचिसंयोजनादिकरणस्वातन्त्र्ययुक्तः शद्धाहम्प्रत्यवमर्शमयः कल्पितेश्वराणां ब्रह्मविष्ण्वा दोनां स्वांशाभिषेकोपकल्पितैश्वर्यो महेश्वरः प्रमाता। सा च प्रतिभा अनपह्नवनीया।।

ई० प्र० वि वि०, पृ० ३४०

बाहर' जो कुछ आभासित होता है, उसका आन्तरिक अवभास ही आत्मा अथवा प्रमाता है, वही स्वभाव और ऐश्वर्य है-

यत्किञ्चिदाभासते, तस्य अन्तर्मुखं यदवभासनं, स आत्मा प्रमाता, स एव च स्वभावः तदेव च ऐश्वर्यमिति सम्बन्धः ।

ई० प्र० वि०१.७

तात्पर्य यह है कि - बाह्य वस्तु के दर्शन के अवसर पर

पहले बाह्य क्रमिक घट प्रकाश होता है पश्चात् 'अयं घटः' – यह अन्तविकल्परूप क्रमिक प्रकाश होता है। अनन्तर इन दोनों का विश्रान्ति स्थान शुद्ध अहं प्रत्यवमशत्मिकप्रकाश स्फुरित होता है । यही अक्रमा प्रतिभा है और मुख्य प्रमाता भी ।

विभु की परावाणी या प्रतिभारूपविमर्शशक्ति भिन्न-भिन्न संवेद्यों में प्रतिभात होकर मायाशक्ति द्वारा ज्ञान, संकल्प और अध्यवसाय आदि नामों द्वारा कही जाती है । नाना संवेद्यों से सम्बद्ध देश काल के अनुरोध से ज्ञान स्मृति आदि भी सक्रम प्रतीत होते हैं । वेदक और संवेद्य भी पृथक् नहीं । सम्पूर्ण संवेद्यों या ज्ञेयों को प्रकाशात्मक परमशिव अपने विमर्शात्मकस्वातन्त्र्य से आत्माभिन्नरूप में प्रकट करते हैं - आत्मा को ही ज्ञेय बनाते' हैं । विमर्शात्म स्वातन्त्र्यरूपप्रतिभा अथवा परावाणी ही परमशिव की शक्ति है जिससे वे शक्तिमान् कहे जाते हैं ।